पूरा पीठ

समाक्ष एस. एस. संधवालिया सी. जस्टिस, ए. एस. बैंस और एम. टंडन, जस्टिस।

सामान्य प्रबंधक, उत्तरी रेलवे-याचिकाकर्ता

बनाम

राष्ट्रपति अधिकारी और अन्य-उत्तरदाता।

सिविल रिट संख्या **1973** की **4369,22** जनवरी, **1979.**

औद्योगिक विवाद अधिनियम ***(14 of 1947)-*** धारा ***2 (***ओं***)*** और ***33-***सी ***(1) (2)*** और ***(5)-***एक मृत कामगार का दावा-धारा ***33-***सी ***(2)*** के तहत एक उत्तराधिकारी द्वारा आवेदन-ऐसा आवेदन-क्या रखरखाव योग्य है।

अभिनिर्धारित *(*प्रति बहुमत एस. एस. संधवालिया मुख्य न्यायाधीश और न्यायमूर्ति एम. टंडन, ए. एस. बैन्स, न्यायमूर्ति, इसके विपरीत*)* कि औद्योगिक विवाद अधिनियम, *1947* की धारा *33-*ग *(1)* के अधीन कार्यवाहियां निष्पादन कार्यवाहियों की प्रकृति की हैं और उपधारा *(2)* के अधीन कार्यवाहियों में न्यायनिर्णयन सम्मिलित है। उपधारा *(2)* का दायरा उपधारा *(1)* की तुलना में व्यापक है और बाद वाला पूर्व को नियंत्रित नहीं करता है। *1964* में संशोधन से पहले प्रमाण पत्र के लिए उप-धारा *(1)* के तहत अकेले एक कामगार आवेदन कर सकता था और किसी कामगार का समनुदेशक या उत्तराधिकारी इस सुविधा का लाभ नहीं उठा सकता था। वे विशेष रूप से अधिकृत होने के परिणामस्वरूप प्रतिस्थापित धारा *33-*सी *(1)* के तहत इस तरह के हकदार बन गए, लेकिन धारा *33-*सी के तहत उनके पक्ष में ऐसा कोई प्राधिकरण नहीं बनाया गया है। *(2).* इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि उपधारा *(1)* के तहत प्राधिकृत व्यक्ति भी धारा *33-*सी के तहत श्रम न्यायालय का रुख कर सकते हैं। *(2).* धारा *33-*ग की उप-धाराओं *(2)* और *(5)* का संयुक्त पठन, वास्तव में, इस बात में कोई संदेह नहीं छोड़ता है कि केवल कामगार ही है जो पूर्व प्रावधान के तहत श्रम न्यायालय का रुख कर सकता है। इस प्रकार, एक व्यक्ति जो कर्मकार नहीं है, वह अधिनियम की धारा *33-*सी *(2)* के तहत श्रम न्यायालय के माध्यम से अपने उत्तराधिकारी या नामित के रूप में एक मृत कर्मकार के बकाया का दावा नहीं कर सकता है।

(पैरा 11, 13, 20)

सीताबाई बनाम ऑटो इंजीनियर्स और अन्य, *1972* लैब, आई सी *733*। एम/एस झरिया फायर ब्रिक्स एंड पॉटरी वर्क्स *(*प्रा.*) v.* श्री भृगो नाथ शर्मा और एक अन्य, *1977* लैब, आई सी *1385.* से अलग किया गया।

अभिनिर्धारित *(*प्रति ए. एस. बैंस, न्यायमूर्ति इसके विपरीत*)* कि धारा *33-*ग की उपधारा *(1)* और *(2)* दोनों में मुख्य विनिर्दिष्ट विशेषता इस तथ्य में निहित है कि क्या आवेदक द्वारा दावा किए गए धन या लाभ की संगणना की गई थी। यदि इसकी गणना पहले ही की जा चुकी थी तो आवेदन उपधारा *(1)* के संदर्भ में उपयुक्त सरकार के पास है, लेकिन यदि इसके लिए धन के संदर्भ में गणना किए जाने में सक्षम धन या लाभों के अधिकार या गणना के निर्णय की आवश्यकता है, तो आवेदन श्रम न्यायालय के समक्ष अधिनियम की धारा *33-*ग *(2)* के संदर्भ में है। विधायिका ने अपने विवेक में धारा *33-*ग की उपधारा *(1)* में एक प्रावधान किया कि कामगार, उसके समनुदेशक या उत्तराधिकारी आवेदन कर सकते हैं। यदि विधानमंडल ने इसके विपरीत इरादा किया है, तो वह उपधारा *(2)* में यह उपबंध कर सकता है कि केवल एक कामगार ही आवेदन कर सकता है, लेकिन उपबंध इसके बारे में मौन है। इसलिए, उपधारा *(2)* में यह निहित है कि कोई कामगार या उसके समनुदेशिती या उत्तराधिकारी, जैसा कि उपधारा *(1)* के मामले में है, इस उपधारा के अधीन भी आवेदन कर सकते हैं यदि न्यायनिर्णयन और परिमाणीकरण किया जाना था। *(*

पैरा *33).*

माननीय न्यायमूर्ति डी. एस. तेवतिया द्वारा 16 अगस्त को निर्दिष्ट किया गया मामला। 1974 मामले में शामिल कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के निर्णय के लिए एक बड़ी पीठ को। माननीय न्यायमूर्ति श्री मनमोहन सिंह गुजराल और माननीय न्यायमूर्ति श्री डी. एस. तेवतिया की खंडपीठ ने 6 दिसंबर, 1974 को मामले को फिर से पूर्ण पीठ के पास भेज दिया। माननीय मुख्य न्यायाधीश श्री एस. एस. संधवालिया, माननीय न्यायमूर्ति श्री ए. एस. बैंस और माननीय न्यायमूर्ति जे. एम. टंडन की पूर्ण पीठ ने अंततः 22 जनवरी, 1979 को मामले का फैसला सुनाया।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन याचिका में यह प्रार्थना की गई है किः-(i) मामले के अभिलेखों की मांग की जाए;

(ii) आक्षेपित आदेश परिशिष्ट 'ग' को निरस्त करते हुए प्रमाणपत्र, अधिदेश या कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए।

(iii) कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जिसे यह माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों में उपयुक्त समझे, आक्षेपित आदेश अनुलग्नक 'सी' को रद्द करते हुए जारी किया जाए।

(iv) रिट याचिका की लागत याचिकाकर्ता को दी जाए।

आगे यह प्रार्थना की जाती है कि रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, आक्षेपित आदेश अनुलग्नक 'सी' के कार्यान्वयन पर रोक लगाई जाए।

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता पी. एस. जैन, अधिवक्ता के. एल. खन्ना और अधिवक्ता वी. एम. जैन उपस्थित थे।

अमर दत्त, अधिवक्ता, उत्तरदाताओं के लिए।

जे एम टंडन, न्यायमूर्तिः -

(1) मुझे अपने विद्वान भाई बैन्स, जस्टिस द्वारा दर्ज किए गए निर्णय को देखने का सौभाग्य मिला है। उनके प्रति बड़े सम्मान के साथ, मैं उसमें व्यक्त विचार को स्वीकार करने में असमर्थ हूं। एक अलग निष्कर्ष पर पहुंचने के कारणों का विवरण नीचे दिया गया है।

(2) वर्तमान संदर्भ को जन्म देने वाले मामले के निर्विवाद तथ्य यह हैं कि मदन लाल, मृतक एक रेलवे कर्मचारी थे और उनकी मृत्यु 19 अगस्त, 1971 को हुई थी। रेलवे से उन्हें भविष्य निधि के रूप में 10,022 रुपये और ग्रेच्युटी के रूप में 2,436 रुपये देने थे। मृतक का दत्तक पुत्र होने का दावा करने वाले उपिंदर दत्त प्रत्यर्थी ने अधिनियम की धारा 33-सी (2) के तहत रेलवे प्रशासन को भविष्य निधि और मृतक को देय ग्रेच्युटी के भुगतान के लिए निर्देश देने के लिए श्रम न्यायालय में आवेदन किया। रेलवे प्रशासन ने स्वीकार किया कि रु। भविष्य निधि के रूप में 10,022 रुपये और ग्रेच्युटी के रूप में 2,436 रुपये मृतक को देय थे, लेकिन याचिका की रखरखाव और याचिकाकर्ता के स्थान के बारे में आपत्तियां उठाई गईं। याचिका के लंबित रहने के दौरान, रेलवे ने सभी आपत्तियों को छोड़ दिया और श्रम न्यायालय द्वारा हकदार व्यक्ति को भुगतान करने के लिए सहमत हो गया। श्रम न्यायालय ने रेलवे को 21 सितंबर, 1973 के आदेश के अनुसार उपिंदर दत्त को भविष्य निधि और ग्रेच्युटी राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया। रेलवे ने भुगतान नहीं किया और इसके बजाय 1973 के सिविल रिट नौम्बर 4369 में श्रम न्यायालय के आदेश को चुनौती दी और आग्रह किया कि वह मदन लाई के मृतक कामगार के उत्तराधिकारी के रूप में उपिंदर दत्त के दावे को अधिनियम की धारा 33-सी (2) के तहत स्वीकार नहीं कर सकता है। इस कानूनी बिंदु पर विभिन्न उच्च न्यायालयों के परस्पर विरोधी विचारों को ध्यान में रखते हुए, विद्वान एकल न्यायाधीश ने मामले को एक खंड पीठ के पास भेज दिया और इसी कारण से एकल न्यायाधीश ने इच्छा व्यक्त की कि इस मुद्दे के जटिल होने के अतिरिक्त कारण के लिए एक पूर्ण पीठ द्वारा इसका निर्णय लिया जाए। इस तरह यह मामला हमारे सामने आया है।

(3) अधिनियम की धारा 33-ग को अधिनियम संख्या 36 द्वारा अधिनियमित किया गया था और 1964 के अधिनियम संख्या 36 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। धारा 33-सी, जैसा कि 1964 में इसके प्रतिस्थापन से पहले थी, में लिखा थाः-"33-सी. किसी कर्मचारी से देय धन की वसूलीः - (1) जहां कोई धन किसी नियोजक से किसी निपटान या अधिनिर्णय के अधीन या अध्याय 5-क के उपबंध के अधीन देय है, वहां कर्मकार, वसूली के किसी अन्य साधन पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, अपने देय धन की वसूली के लिए समुचित सरकार को आवेदन कर सकेगा और यदि समुचित सरकार का समाधान हो जाता है कि कोई धन ऐसा देय है, तो वह उस राशि के लिए कलेक्टर को प्रमाण-पत्र जारी करेगी, जो उसी रीति से भूमि राजस्व के बकाये की वसूली के लिए आगे बढ़ेगा।

(2) जहां कोई कामगार नियोक्ता से कोई ऐसा लाभ प्राप्त करने का हकदार है जिसकी गणना धन के रूप में की जा सकती है, वह राशि जिस पर ऐसे लाभ की गणना की जानी चाहिए, इस अधिनियम के अधीन बनाए गए किसी भी नियम के अधीन रहते हुए, ऐसे श्रम न्यायालय द्वारा निर्धारित की जा सकती है जो उपयुक्त सरकार द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट किया जाए और इस प्रकार निर्धारित राशि को उपधारा में उपबंधित के अनुसार वसूल किया जा सकता है। (1).

(3) किसी लाभ के धन मूल्य की संगणना करने के प्रयोजनों के लिए श्रम न्यायालय, यदि वह ऐसा उचित समझता है, तो एक आयुक्त नियुक्त कर सकता है, जो आवश्यक साक्ष्य लेने के बाद, श्रम न्यायालय को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा और श्रम न्यायालय आयुक्त की रिपोर्ट और मामले की अन्य परिस्थितियों पर विचार करने के बाद राशि निर्धारित करेगा। प्रतिस्थापित धारा 33-ग अब इस प्रकार हैः-

"33-ग किसी नियोक्ता से देय धन की वसूली *(1)* जहां कोई धन किसी निपटान या पुरस्कार के अधीन या अध्याय *5-क* या अध्याय *5-ख* के उपबंधों के अधीन किसी नियोक्ता से किसी कर्मकार को देय है, वहां स्वयं कर्मकार या इस निमित्त लिखित रूप में उसके द्वारा प्राधिकृत कोई अन्य व्यक्ति या कर्मकार की मृत्यु की दशा में, उसका समनुदेशिती या उत्तराधिकारी, वसूली के किसी अन्य साधन पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, उसके देय धन की वसूली के लिए उपयुक्त सरकार को आवेदन कर सकता है और यदि उपयुक्त सरकार का समाधान हो जाता है कि कोई धन ऐसा देय है, तो वह उस राशि के लिए कलेक्टर को एक प्रमाण पत्र जारी करेगी जो भूमि राजस्व के बकाया के समान ही वसूली करने के लिए आगे बढ़ेगीः

बशर्ते कि ऐसा प्रत्येक आवेदन उस तारीख से एक वर्ष के भीतर किया जाएगा जिस दिन नियोक्ता से कामगार को धन देय हुआ थाः

बशर्ते कि ऐसा कोई भी आवेदन एक वर्ष की उक्त अवधि की समाप्ति के बाद दर्ज किया जा सकता है, यदि उपयुक्त सरकार का समाधान हो जाता है कि आवेदक के पास उक्त अवधि के भीतर आवेदन नहीं करने का पर्याप्त कारण था।

(2) जहां कोई श्रमिक नियोक्ता से कोई धन या कोई लाभ प्राप्त करने का हकदार है, जिसकी गणना धन के रूप में की जा सकती है और यदि देय धन की राशि या उस राशि के बारे में कोई प्रश्न उत्पन्न होता है, जिस पर ऐसा लाभ संगणित किया जाना चाहिए, तो इस अधिनियम के तहत बनाए जाने वाले किसी भी नियमों के अधीन रहते हुए, प्रश्न का निर्णय ऐसे श्रम न्यायालय द्वारा किया जा सकता है, जो इस संबंध में उपयुक्त सरकार द्वारा निर्दिष्ट किया जाए।

(3) किसी लाभ के धन मूल्य की संगणना करने के प्रयोजनों के लिए, यदि श्रम न्यायालय उचित समझता है, तो महाप्रबंधक, उत्तर रेलवे बनाम पीठासीन अधिकारी, वगैरह *(*एस एस संधवालिया, मुख्य न्यायाधीश*)* को नियुक्त कर सकता है।

एक आयुक्त जो ऐसा साक्ष्य लेने के बाद, जो आवश्यक हो, श्रम न्यायालय को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा और श्रम न्यायालय आयुक्त की रिपोर्ट और मामले की अन्य परिस्थितियों पर विचार करने के बाद राशि निर्धारित करेगा।

(4) श्रम न्यायालय का निर्णय उसके द्वारा समुचित सरकार को अग्रेषित किया जाएगा और श्रम न्यायालय द्वारा देय पाई गई किसी भी राशि को उपधारा में उपबंधित रीति से वसूल किया जा सकता है।

(5) जहां एक ही नियोक्ता के अधीन नियोजित कर्मचारी उससे कोई धन प्राप्त करने के हकदार हैं*;* या धन के संदर्भ में गणना किए जाने में सक्षम कोई लाभ, तो, ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए, जो इस संबंध में हो सकता है, आंशिक रूप से देय राशि की वसूली के लिए एकल आवेदन ऐसे श्रमिकों की किसी भी संख्या की ओर से या उनके संबंध में किया जाएगा।

स्पष्टीकरण-इस धारा में "श्रम न्यायालय" में किसी राज्य में प्रवृत्त औद्योगिक विवादों की जांच और निपटान से संबंधित किसी विधि के अधीन गठित कोई भी न्यायालय सम्मिलित है।

(6) 1964 में इसके प्रतिस्थापन से पहले धारा 33-ग (1) के तहत यह केवल कामगार ही था जो अपने नियोक्ता से देय राशि की वसूली के लिए एक प्रमाण पत्र के लिए उपयुक्त सरकार से संपर्क कर सकता था, जिसके जारी होने पर राशि को भूमि राजस्व के बकाया के रूप में वसूल किया जा सकता था। धारा 33-सी (एल) के तहत इस अधिकार का विस्तार किसी भी व्यक्ति को लिखित रूप में और उसकी मृत्यु के मामले में उसकी नियुक्ति या उत्तराधिकारियों को दिया गया है। प्रतिस्थापन से पहले धारा 33-सी (एल) के तहत कर्मचारी बिना किसी सीमा के प्रमाण पत्र के लिए आवेदन कर सकता है, लेकिन वर्तमान में धारा 33-सी (1) के तहत उसमें अधिकृत व्यक्ति उस तारीख से एक वर्ष के भीतर आवेदन कर सकता है जिस दिन * नियोक्ता से श्रमिकों को धन देय हो गया था, जो अवधि निश्चित रूप से उपयुक्त सरकार द्वारा पर्याप्त कारण के लिए दूसरे परंतुक के तहत बढ़ाई जा सकती है।

(7) अधिनियम की धारा 33-ग (2) मृतक कामगार के समनुदेशिती या उत्तराधिकारियों के बारे में मौन है। उसकी उपधारा (5) की पृष्ठभूमि में धारा 33-ग (2) के एक सादे पठन से पता चलता है कि उसके अधीन अधिकार का प्रयोग केवल कामगार द्वारा किया जा सकता है, न कि उसके समनुदेशिती या उत्तराधिकारियों द्वारा।

(8) उपिंदर दत्त प्रत्यर्थी के विद्वत वकील ने तर्क दिया है कि किसी कर्मकार के समनुदेशिती और उत्तराधिकारी 1964 में इसके प्रतिस्थापन से पहले धारा 33-ग (1) के तहत प्रमाण पत्र के लिए उपयुक्त सरकार को आवेदन कर सकते हैं, इस तथ्य के बावजूद कि उनमें उनका नाम नहीं था और प्रतिस्थापित धारा 33-ग ने केवल सही स्थिति को स्पष्ट किया है। इसी प्रकार, किसी कर्मकार के समनुदेशिती और उत्तराधिकारी 1964 से पहले धारा 33-ग (2) के तहत उपचार का लाभ उठा सकते थे और इसके बाद भी वे विशेष रूप से अधिकृत नहीं होने के बावजूद इसके हकदार बने रहेंगे। दूसरा, उपधारा (1) के अधीन और धारा 33-ग की उपधारा (2) के अधीन भी दावे निष्पादन कार्यवाहियों की प्रकृति के हैं। उपधारा (2) के अधीन संगणना के मामले में न्यायनिर्णयन केवल आनुषंगिक है। मामला होने पर, किसी कर्मचारी का समनुदेशिती या उत्तराधिकारी धारा 33-सी की उप-धारा (2) के तहत याचिका दायर कर सकता है। तीसरा, धारा 33-ग एक सामाजिक विधान है और यदि समनुदेशिती और कामगार के उत्तराधिकारी को उसकी उपधारा (2) के अधीन याचिका रखने का हकदार नहीं ठहराया जाता है, तो यह बड़ी कठिनाई का कारण बनेगा जो प्राप्त किए जाने के लिए वांछित उद्देश्य को पूर्ववत कर देगा। और अंत में उप-धारा (2) में उस व्यक्ति के बारे में कोई उल्लेख नहीं है जो श्रम न्यायालय का दरवाजा खटखटाने का हकदार है। उप-धारा (1) और (2), जो निष्पादन कार्यवाहियों की प्रकृति में एक दूसरे के समान हैं, के पठन से यह पता चलता है कि जो लोग उप-धारा (1) के अधीन प्रमाण-पत्र के लिए उपयुक्त सरकार को आवेदन कर सकते हैं, वे भी उप-धारा (2) के अधीन श्रम न्यायालय में याचिका दायर कर सकते हैं।

(9) कर्मकार की परिभाषा अधिनियम की धारा 2 (ओं) में दी गई है और इसमें कहा गया हैः 'कर्मकार' से कोई भी व्यक्ति (एक प्रशिक्षु सहित, जो किसी उद्योग में किसी कुशल या अकुशल, मैनुअल, पर्यवेक्षी, तकनीकी या लिपिक कार्य को किराए या पुरस्कार के लिए करने के लिए नियोजित है, चाहे रोजगार की शर्तें व्यक्त हों या निहित हों और

इस अधिनियम के तहत किसी औद्योगिक विवाद के संबंध में किसी कार्यवाही के प्रयोजनों के लिए, ऐसा कोई व्यक्ति शामिल है जिसे उस विवाद के संबंध में या उसके परिणामस्वरूप बर्खास्त, छुट्टी या छंटनी दी गई है या जिसकी बर्खास्तगी, निर्वहन या छंटनी ने उस विवाद को जन्म दिया है, लेकिन इसमें ऐसा कोई व्यक्ति शामिल नहीं है।

(10) 'कामगार' की परिभाषा में उसका समनुदेशक या उत्तराधिकारी शामिल नहीं है। धारा 33-सी (1) के तहत प्रतिस्थापन से पहले प्रमाण पत्र के लिए उपयुक्त सरकार से संपर्क करने के लिए सक्षम एकमात्र व्यक्ति एक कामगार था। ऐसा होने के कारण यह कल्पना करना मुश्किल है कि किसी मृत श्रमिक का समनुदेशक या कानूनी उत्तराधिकारी 1964 से पहले प्रमाण पत्र के लिए सरकार से संपर्क कर सकता है। यह प्रतिस्थापित धारा 33-ग (1) के तहत है कि किसी कर्मचारी के असाइग्नी या उत्तराधिकारियों को उपयुक्त सरकार से प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए सक्षम बनाया गया है। उपिंदर दत्त प्रत्यर्थी के लिए विद्वत वकील का पहला तर्क कि समनुदेशिती या किसी कर्मकार के उत्तराधिकारी प्रतिस्थापन से पहले धारा 33-सी (2) के तहत उपचार की मांग कर सकते हैं और प्रतिस्थापित धारा 33-सी के तहत स्थिति अपरिवर्तित रहती है, कोई योग्यता नहीं है।

(11) सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम पी. एस. राजगोपालन (1) में प्रतिस्थापन से पहले धारा 33-सी (2) के निहितार्थ विचाराधीन थे और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि "किसी निपटान या अधिनिर्णय के अधीन या अध्याय 5-ए के उपबंधों के अधीन" दावों की तीन श्रेणियां धारा 33-सी (2) के अधीन आती हैं और उस अर्थ में धारा 33-सी (2) स्वयं एक प्रकार की निष्पादन कार्यवाही हो सकती है। आगे यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह संभव है कि अध्याय 5-क के उपबंधों के अधीन किए गए या किए गए निपटानों, पुरस्कारों पर आधारित न होने वाले दावे भी धारा 33-ग (2) के अधीन सक्षम हो सकते हैं और इस अर्थ में इसका दायरा धारा 33-ग से अधिक व्यापक था। (l) यह उपबंध पुनः केन्द्रीय अंतर्देशीय जल परिवहन निगम लिमिटेड बनाम कामगार और अन्य, (2) के मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आया और यह इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गयाः-"वाद में, प्रतिवादी के विरुद्ध वादी द्वारा किए गए राहत के दावे में (i) वादी के राहत के अधिकार; (ii) प्रतिवादी के संगत दायित्व के निर्धारण के लिए निर्देशित जांच शामिल है, जिसमें यह भी शामिल है कि क्या प्रतिवादी बिल्कुल भी उत्तरदायी है या नहीं; और (iii) प्रतिवादी के दायित्व की सीमा, यदि कोई हो। राहत देने की दृष्टि से इस तरह के दायित्व से बाहर निकलने को आम तौर पर निष्पादन कार्यवाही का कार्य माना जाता है। ऊपर निर्दिष्ट निर्धारण संख्या (iii), अर्थात्, प्रतिवादी के दायित्व की सीमा को कभी-कभी निष्पादन कार्यवाही में निर्धारण के लिए छोड़ दिया जा सकता है। लेकिन निर्धारण (i) और (ii) के मामले में ऐसा नहीं है। इन्हें आम तौर पर मुकदमे के कार्यों के रूप में माना जाता है न कि निष्पादन कार्यवाही के रूप में। चूँकि धारा 33-ग (2) के अधीन कार्यवाही निष्पादन कार्यवाही की प्रकृति की है, इसलिए यह अनुसरण किया जाना चाहिए कि उपर्युक्त निर्धारणों (i) और (ii) की प्रकृति का अन्वेषण, सामान्य रूप से, इसके दायरे से बाहर है। यह सत्य है कि धारा 33-ग (2) के अधीन किसी कार्यवाही में जैसा कि निष्पादन कार्यवाही में है, उस व्यक्ति की पहचान निर्धारित करना आवश्यक हो सकता है जिसके द्वारा या जिसके विरुद्ध दावा किया गया है यदि उस स्कोर पर कोई चुनौती है। लेकिन यह केवल 'आकस्मिक' है। किसी निष्पादन कार्यवाही के लिए निर्धारण (i) और (ii) को 'आनुषंगिक' कहना एक विकृति होगी, क्योंकि निष्पादन कार्यवाही जिसमें दायित्व की सीमा तय की जाती है, केवल निर्धारण (i) और (ii) पर परिणामी होती है और अंतिम राहत की ओर ले जाने वाली प्रक्रिया में अंतिम चरण का प्रतिनिधित्व करती है। इसलिए, जब धारा 33-ग (2) के अधीन श्रम न्यायालय के समक्ष कोई दावा किया जाता है तो न्यायालय को स्पष्ट रूप से उन सीमाओं को समझना चाहिए जिनके अधीन उसे कार्य करना है। यह एक औद्योगिक अधिकरण के कार्यों को अपने लिए अभिमानी नहीं कर सकता है, जो अकेले ऊपर निर्दिष्ट निर्धारणों (i) और (ii) की प्रकृति में निर्णय लेने का हकदार है, या गणना के अपने मुख्य व्यवसाय के लिए पूर्व को 'आनुषंगिक' बताकर लाभ की गणना करने के लिए आगे बढ़ सकता है। ऐसे मामलों में निर्धारण (i) और (ii) गणना के लिए 'आकस्मिक' नहीं हैं। गणना स्वयं निर्णयों (i) और (ii) के लिए परिणामी और सहायक है, जो औद्योगिक न्यायाधिकरण के संदर्भ में शुरू हुई प्रक्रिया के अंतिम चरण के रूप में है।

(11) ऊपर उल्लिखित दो प्राधिकरणों में उच्चतम न्यायालय की टिप्पणियों ने प्रत्यर्थी उपिंदर दत्त के मामले को मुश्किल से आगे बढ़ाया। विद्वान वकील के तर्क का विषय यह है कि चूंकि धारा 33 सी (2) में निहित प्रावधान

निष्पादन कार्यवाही की प्रकृति में है, इसलिए इसका लाभ किसी कार्यपालक के समनुदेशिती या उत्तराधिकारियों द्वारा भी लिया जा सकता है। तर्क में कोई सार नहीं है। धारा 33-ग (1) एक प्रकार की निष्पादन कार्यवाही है जिसमें कोई न्यायनिर्णयन शामिल नहीं है। 1964 में इसके गठन से पहले प्रमाण पत्र के लिए अकेले एक कर्मचारी इसके तहत आवेदन कर सकता था। किसी कर्मचारी के समनुदेशिती या उत्तराधिकारी इस सुविधा का लाभ नहीं उठा सकते थे। वे विशेष रूप से अधिकृत होने के परिणामस्वरूप प्रतिस्थापित धारा 33-सी (1) के तहत इस तरह के हकदार बन गए। धारा 33-सी (2) के तहत उनके पक्ष में ऐसा कोई प्राधिकरण नहीं दिया गया है, जिसमें अन्यथा भी न्यायनिर्णयन शामिल है। अतः यह अभिनिर्धारित करना कठिन है कि किसी कर्मचारी का समनुदेशिती या उत्तराधिकारी धारा 33-सी के अधीन श्रम न्यायालय में याचिका दायर कर सकता है। (2).

(12) उपिंदर दत्त प्रतिवादी के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि किसी कर्मचारी के समनुदेशिती या उत्तराधिकारियों द्वारा धारा 33-सी (2) के तहत उपचार का लाभ उठाने में असमर्थता कठिनाई का कारण बनेगी क्योंकि उन्हें दीवानी मुकदमा दायर करना पड़ सकता है या व्यय से संबंधित उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्राप्त करना पड़ सकता है। मुझे इस विवाद में भी कोई दम नहीं लगता। धारा 33-ग (2) के तहत निर्णय यदि किसी कर्मचारी के समनुदेशिती या उत्तराधिकारियों के लिए उपलब्ध है, तो अनिवार्य रूप से विरासत के जटिल प्रश्न शामिल होंगे। श्रम न्यायालय के आदेश के खिलाफ धारा 33-सी के तहत कोई अपील नहीं की जाती है। (2). इस तरह के मुद्दों को अंततः श्रम न्यायालय द्वारा तय किए जाने के लिए छोड़ने से अधिक कठिनाई होगी। इसी पृष्ठभूमि में उपचार का लाभ उठाने का अधिकार उत्तराधिकारियों आदि को दिया गया है। धारा 33-सी (एल) के तहत जो विशुद्ध रूप से निष्पादन कार्यवाही की प्रकृति में है और धारा 33-सी के तहत नहीं है (2).

(13) यह तर्क दिया गया है कि धारा 33-सी (2) उस व्यक्ति के बारे में चुप है जो उसके तहत राहत के लिए श्रम न्यायालय का दरवाजा खटखटाया जा सकता है। धारा 33-सी (एल) के तहत उपचार का लाभ उठाने के लिए अधिकृत व्यक्ति धारा 33-सी के तहत श्रम न्यायालय का रुख भी कर सकते हैं (2). यह तर्क फिर से बेमानी है। धारा 33-ग (ल) के अधीन कार्यवाहियां कार्यवाहियों को निष्पादित करने की प्रकृति की हैं और धारा 33-ग (2) के अधीन कार्यवाहियों में न्यायनिर्णयन शामिल है। उपधारा (2) का दायरा इससे अधिक व्यापक है - (1). इस निष्कर्ष की गारंटी देने के लिए कुछ भी नहीं है कि उपधारा (1) के तहत अधिकृत व्यक्ति भी धारा 33-सी के तहत श्रम न्यायालय का रुख कर सकते हैं। (2). धारा 33-ग की उप-धाराओं (2) और (5) को संयुक्त रूप से पढ़ने से इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि केवल कामगार ही पूर्व के अधीन श्रम न्यायालय का रुख कर सकता है।

(14) मदुरा मिल्स कंपनी बनाम गुरुवमल और अन्य (3) मद्रास उच्च न्यायालय के एक विद्वत एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि जहां किसी व्यक्ति के पक्ष में एक वैधानिक अधिकार सृजित किया गया है और कानून विशेष रूप से सृजित अधिकार को लागू करने के लिए एक विशेष तंत्र भी सृजित करता है, इस प्रकार सृजित अधिकार को साधारण सिविल न्यायालय द्वारा प्रवर्तित नहीं किया जा सकता है। अधिनियम की धारा 33-सी (2) में छंटनी मुआवजे की वसूली के लिए एक विशेष तंत्र का प्रावधान है जो अधिनियम के अध्याय 5-ए के तहत देय हो सकता है। इसलिए, सिविल न्यायालय में छंटनी मुआवजे की वसूली के लिए मुकदमा दायर नहीं किया जा सकता है। यह मानते हुए कि इस प्राधिकरण में व्यक्त किया गया दृष्टिकोण इस क्षेत्र को धारण करता है, इसका निहितार्थ यह हो सकता है कि धारा 33-ग (2) के तहत जिन मामलों पर निर्णय लिया जाना है, उस हद तक सिविल कोर्ट की अधिकारिता वर्जित है। यह मानते हुए कि किसी कर्मकार के उत्तराधिकारी धारा 33-ग (2) के तहत श्रम न्यायालय में जाने के हकदार हैं, यह उत्तराधिकारियों के बीच विरासत के मुद्दों पर निर्णय लेने के लिए सक्षम होगा। उत्तराधिकारियों के बीच विवाद में श्रम न्यायालय का निर्णय अंतिम होगा। उत्तराधिकारियों के बीच विरासत के जटिल मुद्दों को श्रम न्यायालय पर छोड़ने का विधानमंडल का इरादा नहीं हो सकता है और न ही इसे धारा 33-सी में प्रदर्शित किया गया है।

(15)वी पी इलेक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड बनाम मीना चटर्जी और अन्य के मामले में, (4) इलाहाबाद उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने राय दी कि विधानमंडल का इरादा उत्तराधिकारियों को हकदार बनाना प्रतीत होता है और यह केवल तभी निर्धारित करता है जब पहले से ही गणना किए गए लाभ की वसूली की जानी हो,

लेकिन तब नहीं जब देय राशि का न्यायनिर्णयन किया जाना हो। अतः किसी कर्मकार के उत्तराधिकारी अधिनियम की धारा 33-ग की उपधारा (1) के अधीन आवेदन कर सकते हैं, लेकिन उसकी उपधारा (2) के अधीन नहीं।

(16) याद राम और अन्य बनाम बीर सिंह और अन्य, (5) दिल्ली उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 33-ग (2) के अधीन आवेदन केवल कर्मकार द्वारा ही किया जा सकता है और यदि ऐसे आवेदन के लंबित रहने के दौरान कर्मकार की मृत्यु हो जाती है, तो उसके उत्तराधिकारी इसे श्रम न्यायालय में जारी नहीं रख सकते क्योंकि वह न्यायालय किसी कर्मकार के अतिरिक्त किसी अन्य को अपने समक्ष आवेदक के रूप में मान्यता नहीं दे सकता है। आगे यह अभिनिर्धारित किया गया कि इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी कामगार के कारण होने वाले धन या लाभ के समतुल्य धन के लिए मुकदमा करने का अधिकार नहीं है। यह उत्तराधिकारियों, उत्तराधिकारियों और कानूनी प्रतिनिधियों के लिए बचता है और वे दीवानी न्यायालय में मुकदमे के माध्यम से उचित कार्यवाही कर सकते हैं। हालाँकि, वे या तो उनकी मृत्यु के बाद धारा 33-सी (2) के तहत कामगार द्वारा किए गए आवेदन को जारी नहीं रख सकते हैं या उनकी मृत्यु की स्थिति में स्वयं ऐसा आवेदन नहीं कर सकते हैं।

(17) इसी तरह का दृष्टिकोण उड़ीसा उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ द्वारा हरमानी नाइक और अन्य बनाम प्रबंधन समाज और अन्य (6) मामले में लिया गया है,

(18) सीताबाई बनाम ऑटो इंजीनियर्स और अन्य में, (7) बंबई उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ ने, तथापि, एक भिन्न दृष्टिकोण अपनाया है। उस न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों के अनुसार, धारा 33-ग (2) के तहत एक कामगार में निहित कार्रवाई का कारण आम तौर पर सामान्य सिद्धांत के तहत उसके उत्तराधिकारियों के पास रहता है कि कार्रवाई के सभी कारण जो व्यक्तिगत हैं, उन्हें छोड़कर उसके उत्तराधिकारियों के पास रहना चाहिए। इसके विपरीत एक निष्कर्ष बिना सोचे समझे कठिनाइयाँ पैदा करेगा। अतः किसी कर्मकार की विधवा को उपदान राशि की गणना करने का अधिकार होगा जो मृतक पति को देय हो गई है। नियमों के तहत निर्धारित प्रपत्र अनुमत हैं और सुविधा के लिए हैं। बंबई उच्च न्यायालय का निर्णय प्रपत्रों की अनुमति पर आधारित है न कि धारा 33-ग की उपधारा (1) और (2) के वाक्यांशों में अंतर पर। जैसा कि याद राम के मामले (उपर्युक्त) में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा इंगित किया गया है, जिसने सीताबाई के मामले (उपर्युक्त) पर ध्यान दिया कि एक श्रमिक की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियों, उत्तराधिकारियों और कानूनी प्रतिनिधियों को धन या उसके बराबर लाभ के लिए मुकदमा करने का अधिकार है, लेकिन वे दीवानी न्यायालय में वाद के माध्यम से उचित कार्यवाही कर सकते हैं। किसी मृत श्रमिक के उत्तराधिकारियों के लिए कार्रवाई के कारण का अस्तित्व स्वयं उन्हें अधिनियम की धारा 33-ग (2) के तहत श्रम न्यायालय में आवेदन करने का अधिकार नहीं देता है। उपचार (धारा 33-सी (2) के तहत) का लाभ अकेले एक कर्मचारी द्वारा उठाया जा सकता है। विद्वान न्यायाधीशों के प्रति अत्यंत सम्मान के साथ, (बंबई उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण से सहमत होना) मुश्किल है। हमारी राय में, धारा 33-सी (2) के तहत उपचार का लाभ अकेले एक कर्मचारी द्वारा उठाया जा सकता है।

(19) मेसर्स झरिया फायर ब्रिक्स एंड पॉटरी वर्क्स (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम श्री भृगो नाथ शर्मा और एक अन्य मामले में, (8) पटना उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ ने बॉम्बे के दृष्टिकोण का अनुसरण किया और दिल्ली उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण से असहमत थी। पटना उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि धारा 33-सी (एल) एक प्रकार के निष्पादन न्यायालय का प्रावधान करती है। अधिकारों का न्यायनिर्णयन अधिनियम की धारा 33-सी (2) के संदर्भ में किया जाना है। हालांकि अधिनियम की धारा 33-सी को 1964 में संशोधित किया गया था, लेकिन कानून का मुख्य भार वहन किया गया है। इसने कामगार को अतिरिक्त लाभ प्रदान किया और श्रम न्यायालय के लिए व्यापक दायरे का निर्माण किया। इसने यह भी स्पष्ट किया कि उत्तराधिकारियों और समनुदेशकों को उन लाभों का दावा करने का भी अधिकार था, जिनके वे उत्तराधिकारी और समनुदेशकों के रूप में अपनी क्षमता के अनुसार हकदार थे। 1964 से पहले का कानून स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि बुनियादी अंतर इस तथ्य में निहित है कि क्या अधिकारों और धन मूल्य पर निर्णय लिया गया था या नहीं। आवेदक कौन था, यह विशिष्टता नहीं थी। अब तो होना ही चाहिए। यदि न्यायनिर्णयन और परिमाणीकरण किया जाना था, तो आवेदन उपधारा (2) के संदर्भ में होना चाहिए और जहां न्यायनिर्णयन और परिमाणीकरण पूरा हो चुका था, वहां आवेदन अधिनियम की धारा 33-ग की उपधारा

(1) के संदर्भ में होना चाहिए। संशोधन के बाद आवश्यक विशेषता को मंजूरी नहीं दी गई है। मेसर्स झरिया फायर वर्क्स एंड पॉटरी वर्क्स मामले (उपर्युक्त) में फैसले का आधार यह है कि एक कर्मचारी 1964 के संशोधन से पहले धारा 33 (सी) (1) के तहत और धारा 33-सी (2) के तहत भी आवेदन कर सकता है और 1964 में धारा 33-सी के प्रतिस्थापन के बाद भी यही समानता बनी रहेगी, जिसके परिणामस्वरूप धारा 33-सी (एल) के तहत सक्षम बनाए गए जोड़े गए व्यक्ति भी धारा 33-सी के तहत श्रम न्यायालय में जाने के हकदार होंगे। (2). यदि पटना उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया दृष्टिकोण अच्छा है तो यह आवश्यक रूप से इस बात का पालन करेगा कि धारा 33-सी (एल) धारा 33-सी को नियंत्रित करती है (2). ऐसा नहीं हो सकता। धारा 33-ग की उपधारा (1) और (2) एक दूसरे से भिन्न हैं। उपधारा (2) का दायरा उपधारा से भिन्न और व्यापक है। (1). उपधारा (1) में कोई न्यायनिर्णयन शामिल नहीं है जबकि उपधारा (2) में न्यायनिर्णयन शामिल है। अतः उपधारा (1) के अधीन प्राधिकृत व्यक्ति स्वयं उपधारा के अधीन श्रम न्यायालय में जाने के हकदार नहीं होंगे। (2). विद्वान न्यायाधीशों के प्रति बहुत सम्मान के साथ, पटना उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए दृष्टिकोण से सहमत होना फिर से मुश्किल है।

(20) ऊपर की चर्चा को ध्यान में रखते हुए, मेरा मानना है कि एक व्यक्ति जो एक कामगार नहीं है, वह अधिनियम की धारा 33-सी (2) के तहत श्रम न्यायालय के माध्यम से अपने उत्तराधिकारी या नामित के रूप में एक मृत कामगार के बकाया का दावा नहीं कर सकता है।

(21) पक्षकारों के विद्वत वकील इस बात से सहमत हैं कि 1973 के सी. डब्ल्यू. पी. 4369 में शामिल एकमात्र बिंदु प्रतिवादी उपिंदर दत्त की धारा 33-सी के तहत श्रम न्यायालय के समक्ष अपनी याचिका को बनाए रखने की पात्रता के बारे में है। (2). उस पर निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए रिट को स्वीकार कर लिया जाता है और 21 सितंबर, 1973 के श्रम न्यायालय के विवादित आदेश को रद्द कर दिया जाता है। पार्टियों को अपना खर्च खुद वहन करने के लिए छोड़ दिया जाता है।

ए. एस. बैन्स, जस्टिस

(22)यह मामला 6 दिसंबर, 1974 की एक खंड पीठ के आदेश द्वारा निर्दिष्ट किया गया था। इस संदर्भ में निर्धारण के लिए जो प्रश्न उत्पन्न होता है वह यह है कि क्या कोई व्यक्ति जो स्वयं श्रमिक नहीं है, वह औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का अधिनियम संख्या 14) (जिसे इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित किया गया है) की धारा 33-सी (2) के तहत श्रम न्यायालय के माध्यम से अपने उत्तराधिकारी या नामांकित व्यक्ति के रूप में किसी मृत श्रमिक का बकाया वसूल सकता है।

(23) इस संदर्भ को जन्म देने वाले तथ्य निम्नानुसार हैं। जगदीश राय का पुत्र मदन लाई उत्तर रेलवे के लुधियाना में ब्रेकमैन के रूप में काम कर रहा था। 19 अगस्त, 1972 को ब्रेकसमैन के रूप में काम करते हुए उनकी मृत्यु हो गई। रु. की राशि। 12, 458/- रेलवे के पास मृतक कामगार के खाते में प्रोविडेंट फंड और ग्रेच्युटी के रूप में पड़ा था। प्रतिवादी नंबर 2 उपिंदर दत्त ने मृतक मदन लाई के उत्तराधिकारी के रूप में इस राशि का दावा किया। उत्तर रेलवे ने प्रत्यर्थी संख्या 2 को इस आधार पर भुगतान करने से इनकार कर दिया कि चूंकि दावा रुपये से अधिक है। 5, 000/- राशि तब तक नहीं दी जा सकती जब तक कि दावेदार किसी सक्षम न्यायालय से उत्तराधिकार प्रमाण पत्र प्राप्त न कर ले। नतीजतन, प्रतिवादी नं. 2 ने न्यायनिर्णयन के लिए 13 अक्टूबर, 1972 को प्रत्यर्थी संख्या 1 के समक्ष अधिनियम की धारा 33-ग (2) के अधीन आवेदन किया। आवेदन में आरोप लगाया गया था कि वह मृतक कामगार का गोद लिया हुआ बेटा था और इसलिए भुगतान का हकदार था। प्रत्यर्थी संख्या 2, अर्थात् उपिंदर दत्त, श्रम न्यायालय के समक्ष सफल हुए और श्रम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उपिंदर दत्त (प्रत्यर्थी संख्या 2) दत्तक पुत्र के रूप में मृतक कामगार के खाते में जमा राशि का हकदार था और प्रत्यर्थी संख्या 3 को उपरोक्त राशि जारी करने का निर्देश दिया। इस आदेश से असंतुष्ट, उत्तर रेलवे के महाप्रबंधक ने वर्तमान याचिका दायर की। मामला सबसे पहले एक विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष आया, जिन्होंने इसे खंड पीठ को भेज दिया। डिवीजन बेंच ने मामले को एक पूर्ण पीठ के पास भेज दिया और इस तरह हम मामले पर विचार कर रहे हैं।

(24) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील, श्री पी. एस. जैन ने हमारे समक्ष प्रचार किया कि प्रत्यर्थी नंबर 2 अपने स्वयं के प्रदर्शन पर मृतक कामगार का एक गोद लिया हुआ पुत्र और नामित है, और वह स्वयं एक कामगार नहीं होने के कारण, अधिनियम की धारा 33-सी (2) के तहत आवेदन करने के लिए कानून के तहत सक्षम नहीं है और उसका सटीक तर्क यह है कि धारा 33 सी (2) के तहत आवेदन केवल एक कामगार द्वारा स्वयं अपने नियोक्ता के खिलाफ किया जा सकता है, न कि उसके नामित या उसके उत्तराधिकारी द्वारा और यह कि श्रम न्यायालय को स्वयं श्रमिक के अलावा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दायर आवेदन पर मामले का निर्णय लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था।

(25)इस विवाद के लिए श्री जैन ने अधिनियम की धारा 33-सी (1) और (2) और औद्योगिक विवाद (केंद्रीय) नियम, 1957 के नियम 62 के प्रावधान पर भरोसा किया। अधिनियम की उपरोक्त उप-धारा 2 (ओं) "कामगार" को परिभाषित करती है। उन्होंने यू पी इलेक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड बनाम मीना चटर्जी और अन्य, 1969 (4 ऊपर) याद राम बनाम बीर सिंह पर भी भरोसा किया। (5 supra) हरमानी नाइक और अन्य बनाम प्रबंधन, समाज और अन्य, (6 supra) दावेदार प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से रिटर्न दाखिल किया गया है। दावेदार के वकील श्री अमर दत्त ने तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 33-सी (2) के तहत आवेदन एक असाइनी या कामगार के उत्तराधिकारी द्वारा सक्षम है। दत्तक पुत्र होने के नाते दावेदार उस राशि का हकदार है जो विवाद में है। इस तर्क के लिए उनका रुख यह है कि धारा 33-सी (1) और 33-सी (2) पारस्परिक रूप से अनन्य नहीं हैं। ये प्रावधान समान हैं, और इन प्रावधानों के तहत कार्यवाही निष्पादन की प्रकृति में हैं और एक त्वरित उपाय प्रदान किया गया है ताकि कामगार और उनके उत्तराधिकारियों को दीवानी न्यायालयों में लंबे मुकदमेबाजी में नहीं डाला जा सके। वह आगे कहते हैं कि धारा 33-सी (2) इस बारे में चुप है कि कौन आवेदन कर सकता है। यह केवल धारा 33-सी (1) के तहत प्रदान किया गया है और इन दोनों प्रावधानों को एक साथ पढ़ा जाना है। उन्होंने अपने तर्क के समर्थन में आगे सीताबाई बनाम एम/एस पर भरोसा किया है। ऑटो इंजीनियर्स, (7 ऊपर) मेसर्स झरिया फायर ब्रिक्स एंड पॉटरी वर्क (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम श्री भृगो नाथ शर्मा और एक अन्य, (8 ऊपर) सेंट्रल इनलैंड वाटर ट्रांसपोर्ट कॉरपोरेशन लिमिटेड। कर्मचारी और दूसरा, (2 ऊपर) द सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम पी. एस. राजगोपालन आदि। (1 ऊपर) और बचित्तर सिंह बनाम केंद्रीय श्रम न्यायालय (9).

(26) प्रतिद्वंद्वी दलीलों को समझने के लिए, अधिनियम की धारा 33-ग (1) और (2) के प्रावधानों को निर्धारित करना आवश्यक है जो निम्नानुसार हैंः —

33-ग (1) नियोक्ता से देय धन की वसूली-जहां किसी निपटान या अधिनिर्णय के अधीन या अध्याय *5*-क या अध्याय *5*-ख के उपबंधों के अधीन किसी कर्मकार से कोई धन देय है, वहां स्वयं कर्मकार या इस निमित्त लिखित रूप में उसके द्वारा प्राधिकृत कोई अन्य व्यक्ति या कर्मकार की मृत्यु की दशा में उसका समनुदेशिती या उत्तराधिकारी, वसूली के किसी अन्य साधन पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, उपयुक्त सरकार को *(9)* ए. आई. आर. *1969* पंजाब और हरियाणा *187* के लिए आवेदन कर सकता है।- बशर्ते कि ऐसा प्रत्येक आवेदन उस तारीख से एक वर्ष के भीतर किया जाएगा जिस दिन पैसा नियोक्ता से कामगार को देय हो गया थाः

बशर्ते कि ऐसे किसी भी आवेदन पर एक वर्ष की उक्त अवधि की समाप्ति के बाद विचार किया जा सकता है, यदि उपयुक्त सरकार का समाधान हो जाता है कि आवेदक के पास उक्त अवधि के भीतर आवेदन नहीं करने का पर्याप्त कारण था।

(2) जहां कोई कामगार नियोक्ता से कोई धन या कोई लाभ प्राप्त करने का हकदार है जिसकी गणना धन के रूप में की जा सकती है और यदि देय धन की राशि के बारे में या उस राशि के बारे में कोई प्रश्न उत्पन्न होता है जिस पर ऐसा लाभ संगणित किया जाना चाहिए, तो इस अधिनियम के अधीन बनाए जाने वाले किसी भी नियम के अधीन रहते हुए, प्रश्न का निर्णय ऐसे श्रम न्यायालय द्वारा किया जा सकता है जो उपयुक्त सरकार द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट किया जाए।

(27)इन प्रावधानों को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि दोनों प्रावधान नियोक्ता से धन की वसूली से संबंधित हैं। जबकि धारा 33-ग (1) के अधीन जहां धन किसी नियोक्ता से किसी निपटान या अधिनिर्णय के अधीन या अध्याय 5-क या

अध्याय 5-ख के उपबंधों के अधीन कामगार को देय है। और धन की संगणना के संबंध में कोई विवाद नहीं है, कामगार स्वयं या उसके द्वारा अधिकृत कोई व्यक्ति लिखित रूप में या कर्मकार की मृत्यु की स्थिति में, समनुदेशिती या कर्मकार के उत्तराधिकारी देय राशि की वसूली के लिए उपयुक्त सरकार को आवेदन कर सकते हैं और यदि उपयुक्त सरकार का समाधान हो जाता है कि कोई राशि देय है, तो वह कलेक्टर को उस राशि के लिए एक प्रमाण पत्र जारी करेगी जो भूमि राजस्व के बकाया के रूप में उसी तरीके से वसूली करने के लिए आगे बढ़ेगी। इस तरह का आवेदन करने के लिए एक वर्ष की सीमा का प्रावधान किया गया है और उपयुक्त सरकार एक वर्ष की अवधि समाप्त होने के बाद भी विलंब को माफ करने के लिए अधिकृत है यदि आवेदक द्वारा पर्याप्त कारण दिखाया गया है। धारा 33-सी (2) के तहत यह निर्दिष्ट नहीं है कि कौन आवेदन कर सकता है। इस प्रावधान से यह स्पष्ट है कि यदि कोई श्रमिक नियोक्ता से कोई धन या लाभ प्राप्त करने का हकदार है जिसकी गणना की जा सकती है तो श्रम न्यायालय ऐसे आवेदन पर विचार करेगा और उस राशि की गणना करेगा जिसके लिए श्रमिक हकदार है। मेरे विचार से, दोनों प्रावधान नियोक्ता से राशि की वसूली से संबंधित हैं और निष्पादन कार्यवाही की प्रकृति में हैं। मुख्य अंतर यह प्रतीत होता है कि धारा 33-सी (एल) के तहत जहां राशि की गणना पहले से ही निपटान या अध्याय वी-ए या अध्याय वी-बी के किसी अन्य प्रावधान को पूर्ववत करने के लिए की गई है, तो आवेदन उपयुक्त सरकार के पास होगा और यदि राशि की गणना नहीं की गई है और कामगार राशि का हकदार है तो धारा 33-सी (2) के तहत एक आवेदन किया जाएगा और चूंकि न्यायनिर्णयन का एक तत्व शामिल है, इसलिए श्रम न्यायालय को ऐसे आवेदन को स्वीकार करने का अधिकार है। जैसा कि पहले देखा गया है, धारा 33-सी (2) इस बारे में मौन है कि कौन आवेदन कर सकता है, जबकि धारा 33-सी (एल) में यह प्रावधान किया गया है कि कौन आवेदन कर सकता है। सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, मेरी राय है कि धारा 33-ग की उपधारा (2) के अधीन भी या तो कर्मकार स्वयं या उसकी मृत्यु के मामले में उत्तराधिकारी या समनुदेशिती एक आवेदन कर सकता है जो उपबंध में निहित है। इसके अलावा दोनों प्रावधानों को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए। इन्हें एक दूसरे के साथ अलग-अलग नहीं पढ़ा जा सकता है। ये प्रावधान भी ओवरलैप होते हैं। उदाहरण के लिए, धारा 33-सी (1) के तहत एक अधिनिर्णय या निपटान के तहत देय निर्दिष्ट राशि के लिए एक आवेदन किया जाता है और नियोक्ता राशि पर विवाद करता है तो यह उचित सरकार नहीं है जो मामले का निर्णय कर सकती है। पुनः श्रम न्यायालय द्वारा धारा 33-ग की उपधारा (2) के अधीन मामले का विनिश्चय किया जाना है। श्री जैन ने नियम 62 के अंतर्गत के-3 का उल्लेख किया है और स्पष्ट रूप से हमारा ध्यान आकर्षित किया है कि इस रूप में उत्तराधिकारी उस राशि के निर्धारण के लिए आवेदन नहीं कर सकते हैं जिसकी गणना धन के संदर्भ में की जा सकती है। मुझे इस विवाद में बहुत अधिक योग्यता नहीं मिलती है। नियम) अधिनियम के प्रावधान को ओवरराइड नहीं कर सकते हैं। इसके अलावा यह व्याख्या का तय नियम है कि अधिनियम के मुख्य प्रावधान नियमों के अधीन नहीं हैं। अधिनियम के मुख्य प्रावधानों की स्वतंत्र रूप से व्याख्या की जानी है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि ये नियम व्याख्या के लिए सहायक हो सकते हैं, लेकिन अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या नियमों के आधार पर नहीं की जा सकती है। श्री जैन ने आगे धारा 2 में दी गई कर्मकार की परिभाषा पर भरोसा किया और उनका कहना है कि इसमें उत्तराधिकारी या समनुदेशित व्यक्ति शामिल नहीं है। कर्मकार की यह परिभाषा याचिकाकर्ता के लिए बहुत मददगार नहीं हो सकती है क्योंकि धारा 33-सी की उप-धारा (2) के तहत यह प्रावधान नहीं है कि कर्मकार भी इसके तहत आवेदन कर सकता है। विभिन्न अधिकारियों द्वारा यह व्याख्या की जाती है कि कर्मचारी पूर्व कर्मचारी को भी शामिल करता है। नेशनल बिल्डिंग्स कंस्ट्रक्शन लिमिटेड बनाम प्रीतम सिंह गिल और अन्य में, (10) यह उनके (10) ए आई आर 1972 एस सी 1579 के पास है। महाप्रबंधक, उत्तर रेलवे बनाम पीठासीन अधिकारी, वगैरह (ए. एस. बैंस, न्यायमूर्ति) लॉर्डशिप्स कि कामगार में पूर्व कर्मचारी शामिल हैं। अधिनियम की धारा 33-सी में संशोधन पर भी भरोसा किया गया है। इससे पहले यह धारा क़ानून में नहीं थी। इसे वर्ष 1956 में जोड़ा गया और 1964 में इसमें और संशोधन किया गया। मूल रूप से धारा 33-सी (एल) में उत्तराधिकारी या समनुदेशक का कोई संदर्भ नहीं था, लेकिन संशोधन के बाद उत्तराधिकारी और समनुदेशकों को इस प्रावधान में शामिल किया गया है। इससे पहले भी धारा 33-सी (2) में किसी कामगार या उसके उत्तराधिकारी या समनुदेशित व्यक्ति का कोई उल्लेख नहीं था और संशोधित प्रावधानों में भी इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि कौन आवेदन कर सकता है। 1964 में संशोधन से पहले अधिनियम की धारा 33-सी निम्नानुसार थीः -

"33 सी। नियोक्ता से देय धन की वसूली *-(1)* जहां कोई धन किसी नियोजक से किसी निपटान या अधिनिर्णय के अधीन या अध्याय *5*-क के उपबंधों के अधीन देय है, वहां कामगार, प्रतिकूल प्रभाव या वसूली के किसी अन्य तरीके के बिना, अपने देय धन की वसूली के लिए समुचित सरकार को आवेदन कर सकता है और यदि समुचित सरकार का समाधान हो जाता है कि कोई धन ऐसा देय है, तो वह उस राशि के लिए कलेक्टर को एक प्रमाण पत्र जारी करेगी, जो उसी रीति से उसी राशि की वसूली करने के लिए आगे बढ़ेगा जिस रीति से भूमि राजस्व का बकाया है।

(2) जहां कोई कामगार नियोजक से ऐसा कोई लाभ, जो धन के रूप में संगणित किए जाने में सक्षम है, प्राप्त करने का हकदार है, वहां वह रकम जिस पर ऐसे लाभ की संगणना की जानी चाहिए, इस अधिनियम के अधीन बनाए गए किसी भी नियम के अधीन रहते हुए, ऐसे श्रम न्यायालय द्वारा निर्धारित की जा सकती है, जो इस निमित्त समुचित सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए और इस प्रकार निर्धारित राशि की वसूली की जा सकती है, जैसा कि उपधारा *(1) (28)* में उपबंध किया गया है। धारा *33*-ग *(1)* में संशोधन के बाद उत्तराधिकारियों और समनुदेशकों को शामिल किया गया था, लेकिन जहां तक धारा *33*-ग *(2)* का संबंध है, इस बात का कोई संकेत नहीं है कि आवेदन कौन कर सकता है। पहले भी यह प्रावधान मौन था और संशोधन के बाद फिर से इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि आवेदन कौन कर सकता है। संशोधन के बाद जो शब्द हटा दिए गए थे, वे इस प्रकार हैं: "और इस प्रकार निर्धारित राशि की वसूली, जैसा कि उपधारा *(1)* में उपबंध किया गया है, की जा सकती है।

इसलिए मुझे समझ नहीं आता कि याचिकाकर्ता वर्ष 1964 के संशोधन के आधार पर अपने मामले को कैसे आगे बढ़ा सकता है। श्री जैन ने यू. पी. इलेक्ट्रिक सप्लाई कंपनी लिमिटेड बनाम, मीना चटर्जी और अन्य (11) वाद राम बनाम बीर सिंह, (5 ऊपर) हरमानी नाइक और अन्य बनाम प्रबंधन समाज और एक अन्य, (6 supra). यह सच है कि इन प्राधिकारियों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कामगार धारा 33-ग (2) के अधीन आवेदन कर सकता है, न कि उसका उत्तराधिकारी या समनुदेशिती। दिल्ली, इलाहाबाद और उड़ीसा उच्च न्यायालयों के प्रभुओं के प्रति अत्यंत सम्मान के साथ मैं उनके दृष्टिकोण का पालन करने के लिए इच्छुक नहीं हूं। यदि इस दृष्टिकोण का पालन किया जाता है, तो यह मृत श्रमिक के उत्तराधिकारियों या समनुदेशकों के लिए कठिनाई पैदा करेगा। विधायिका की यह मंशा नहीं हो सकती। सिविल न्यायालयों में मुकदमेबाजी से कामगार को बचाने के लिए वर्ष 1956 में धारा 33-सी जोड़ी गई थी। यह एक प्रकार का त्वरित और प्रभावी उपचार है। यह उल्लेख करना उचित है कि यह श्रम के लाभ के लिए अधिनियमित एक सामाजिक और श्रम कानून है। कार्रवाई का कारण कर्मकार की मृत्यु के बाद भी बना रहता है, बल्कि समनुदेशकों या उत्तराधिकारियों के मामले में अधिक उदार दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। कर्मकार की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी रोटी कमाने वाले की मृत्यु के कारण पीड़ित होते हैं और जिन लाभों का कर्मकार स्वयं हकदार होता है, वे उसके उत्तराधिकारियों और समनुदेशकों को उपलब्ध होते हैं। यह तर्क दिया गया था कि यह कानून का जटिल प्रश्न है और जब उत्तराधिकारियों और समनुदेशकों के बीच प्रतिस्पर्धा होती है तो श्रम न्यायालय इस मामले पर निर्णय लेने के लिए उचित प्राधिकरण नहीं होगा कि मृत कामगार का वास्तविक उत्तराधिकारी या समनुदेशक कौन है। मुझे नहीं लगता कि कई मामलों में ऐसी कोई कठिनाई पैदा हो सकती है। इस तरह की प्रतियोगिता बहुत कम ही हो सकती है, अन्यथा आमतौर पर ऐसी कोई प्रतियोगिता नहीं होती है। यदि उत्तराधिकारियों के बीच कोई प्रतिस्पर्धा है और यह निर्धारित किया जाना है कि वास्तविक दावेदार कौन है तो श्रम न्यायालय के लिए भी मामले पर निर्णय लेने में कोई कठिनाई नहीं है। श्रम न्यायालयों का गठन अधिनियम की धारा 7 के तहत उपयुक्त सरकार द्वारा किया जाता है और धारा 7 (3) के तहत केवल निम्नलिखित व्यक्तियों को श्रम न्यायालय के पीठासीन अधिकारियों के रूप में नियुक्त किया जा सकता है: "एक व्यक्ति श्रम न्यायालय के पीठासीन अधिकारी के रूप में नियुक्ति के लिए योग्य नहीं होगा, जब तक कि-

(क) वह उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रहा है; या

(ख) वह कम से कम तीन वर्ष की अवधि के लिए जिला न्यायाधीश या अतिरिक्त जिला न्यायाधीश रहा है; या

(ग) उसने औद्योगिक विवाद (अपीलीय न्यायाधिकरण) अधिनियम, 1950 (1950 का 48) के तहत गठित श्रम अपीलीय न्यायाधिकरण के अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य का पद कम से कम दो वर्ष की अवधि के लिए या किसी न्यायाधिकरण का पद संभाला है; या

(घ) उसने भारत में कम से कम सात वर्ष के लिए कोई न्यायिक पद संभाला है; या

(ङ) वह किसी प्रांतीय अधिनियम के तहत गठित श्रम न्यायालय का कम से कम पांच वर्ष के लिए पीठासीन अधिकारी रहा है।

इस उपबंध से यह स्पष्ट है कि केवल लंबे समय तक न्यायिक अनुभव रखने वाले व्यक्तियों को ही श्रम न्यायालय के पीठासीन अधिकारी के रूप में नियुक्त किया जा सकता है और ऐसे श्रम न्यायालयों के लिए यह निर्णय करने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती है कि वास्तविक उत्तराधिकारी कौन है। यह प्रावधानों में निहित है कि एक कामगार, उसके उत्तराधिकारी और समनुदेशिती धारा 33-ग (2) के तहत आवेदन कर सकते हैं अन्यथा यदि विपरीत दृष्टिकोण लिया जाता है तो धारा 33-ग (2) के संदर्भ में कामगार भी आवेदन नहीं कर सकता है क्योंकि प्रावधान इस बारे में मौन है कि कौन आवेदन कर सकता है। याचिकाकर्ता की ओर से यह स्वीकार किया जाता है कि कर्मचारी आवेदन कर सकता है लेकिन उसके उत्तराधिकारी और समनुदेशित व्यक्ति नहीं। यदि कामगार आवेदन कर सकता है तो उसके उत्तराधिकारी और समनुदेशित व्यक्ति भी आवेदन करने के हकदार हैं क्योंकि कर्मचारी नियोक्ता से जो कुछ भी प्राप्त करने का हकदार है, उसकी मृत्यु की स्थिति में उसके उत्तराधिकारी और समनुदेशित व्यक्ति भी इसके हकदार हैं। किसी भी अन्य व्याख्या से कर्मकार के उत्तराधिकारियों को बेतुके परिणाम और कठिनाई होगी। धारा 33-सी (1) के तहत भी प्रतिद्वंद्वी उत्तराधिकारियों के बीच विवाद हो सकता है और उस मामले में सरकार को निर्णय लेना है और धारा 33-सी (2) के तहत यह श्रम न्यायालय है जिसे निर्णय लेना है। यदि सरकार को यह निर्णय लेने का अधिकार है कि उत्तराधिकारी या समनुदेशक कौन है, तो श्रम न्यायालय इस प्रश्न के बारे में निर्णय लेने के लिए बेहतर स्थिति में है क्योंकि श्रम न्यायालय का संचालन न्यायिक अनुभव रखने वाले व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। मैं जो दृष्टिकोण ले रहा हूं वह सीताबाई बनाम एम/एस में अधिकारियों द्वारा समर्थित है। आउट इंजीनियर और अन्य, (7 ऊपर) और मेसर्स झरीज फायर ब्रिक एंड पॉटरी वर्क (प्रा.) लिमिटेड बनाम श्रीरिगो नाथ शर्मा और अन्य, (8 supra). सीताबाई के मामले में (ऊपर) यह बॉम्बे उच्च न्यायालय के उनके लॉर्डशिप द्वारा निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया थाः -

"इस प्रकार एक विधवा को उपदान राशि की गणना के लिए आवेदन करने का अधिकार है जो मृतक पति को देय हो गई है।

इस मामले में कामगार की मृत्यु हो गई थी और वह ग्रेच्युटी का हकदार था। उनकी विधवा ने अधिनियम की धारा 33-सी (2) के तहत ग्रेच्युटी के भुगतान के लिए आवेदन किया था। उनके दावे को श्रम न्यायालय ने खारिज कर दिया और उच्च न्यायालय ने इसकी अनुमति दे दी। बंबई उच्च न्यायालय के उनके अधिपतियों ने यू. पी. विद्युत आपूर्ति कंपनी लिमिटेड बनाम मीना चटर्जी और अन्य (4 ऊपर) पर भी ध्यान दिया, जिसमें एक विपरीत दृष्टिकोण लिया गया था। मैसर्स झरिया फायर ब्रिक्स एंड पॉटरी वर्क के मामले (उपर्युक्त) में भी इसी तरह का दृष्टिकोण लिया गया था, जिसमें पटना उच्च न्यायालय के उनके लॉर्डशिप्स ने निम्नलिखित रूप में टिप्पणी की थीः -

पीठ ने कहा, "संशोधन से पहले अधिनियम की उप-धारा (1) और (2) के मूल्यांकन से इस बात में कोई संदेह नहीं है कि दोनों उप-धाराओं की विशिष्ट विशेषताएं इस सवाल के इर्द-गिर्द घूमती हैं कि क्या धन या लाभों की मात्रा निर्धारित की गई थी या नहीं। यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि अधिनियम की धारा 33-सी की उप-धारा (1) में एक प्रकार के निष्पादन न्यायालय का प्रावधान है। अधिकारों का न्यायनिर्णयन अधिनियम की धारा 33-सी की उपधारा (2) के संदर्भ में किया जाना है। हालांकि अधिनियम की धारा 33-सी को 1964 में संशोधित किया गया था, लेकिन कानून का मुख्य भार वहन किया गया है। इसने कामगार को अतिरिक्त लाभ प्रदान किया और श्रम न्यायालय के लिए व्यापक दायरे का निर्माण किया। इसने यह भी स्पष्ट किया कि उत्तराधिकारियों और नियुक्तियों को उन लाभों का दावा करने का भी अधिकार था, जिनके वे उत्तराधिकारी या नियुक्तकर्ता के रूप में अपनी क्षमता के

अनुसार हकदार थे। जबकि अधिनियम की धारा 33-सी की उप-धारा (1) "जहां कोई भी पैसा कामगार को देय है" शब्दों के साथ शुरू होती है। उप-धारा (2) "जहां कोई श्रमिक हकदार है" अभिव्यक्ति के साथ खुलती है। मेरे विचार में, "देय" और "हकदार" शब्द महत्वपूर्ण हैं। जबकि "देय" शब्द एक दावे की मात्रा और गणना को दर्शाता है, "हकदार" अभिव्यक्ति प्राप्त करने के अधिकार को समझती है जिसमें अधिकारों और लाभों की सीमा शामिल है। इसलिए, मेरे विचार में, अधिनियम की धारा 33-सी की उप-धारा (1) और (2) में विशिष्ट विशेषता इस तथ्य में निहित है कि आवेदक द्वारा दावा किए गए धन या लाभ की गणना की गई थी या नहीं। यदि इसकी गणना पहले ही की जा चुकी है, तो देय राशि की प्राप्ति के लिए अधिनियम की धारा 33-सी की उप-धारा (1) के संदर्भ में उपयुक्त सरकार को आवेदन देना होगा। लेकिन यदि इसके लिए धन के संदर्भ में गणना किए जाने में सक्षम धन या लाभों के अधिकार या गणना के निर्णय की आवश्यकता है, तो आवेदन श्रम न्यायालय के समक्ष अधिनियम की धारा 33-ग (2) के संदर्भ में होना चाहिए। तत्काल मामले में, प्रत्यर्थी का अधिकार निर्विवाद था, केवल मात्रा निर्धारित की जानी बाकी थी।

(29) उच्चतम न्यायालय केन्द्रीय अंतर्देशीय जल परिवहन निगम लिमिटेड बनाम कामगार और अन्य (2 उपर्युक्त) के उनके अधिपति द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा 33ग (2) के अधीन कार्यवाही सामान्यतः निष्पादन कार्यवाही की प्रकृति की कार्यवाही है जिसमें श्रम न्यायालय किसी कामगार को उसके नियोक्ता से देय धन राशि की गणना करता है या यदि श्रमिक किसी ऐसे लाभ का हकदार है जिसकी गणना धन के रूप में की जा सकती है तो श्रम न्यायालय धन के संदर्भ में लाभ की गणना करने के लिए अग्रसर होता है। यह गणना या गणना धन या लाभ के मौजूदा अधिकार का अनुसरण करती है, क्योंकि इसके लिए पहले निर्णय लिया गया था, या अन्यथा, विधिवत प्रावधान किया गया था।

(30)राष्ट्रीय भवन निर्माण निगम लिमिटेड बनाम प्रीतम सिंह गिल और अन्य (10 ऊपर) यह निम्नलिखित रूप में देखा गया थाः-"धारा 33 (2) का इस तरह से अर्थ लगाया जाना चाहिए कि वह अपने दायरे में एक कामगार को ले, जो उस अवधि के दौरान नियोजित था, जिसके संबंध में वह राहत का दावा करता है, भले ही वह अब आवेदन के समय कार्यरत न हो। दूसरे शब्दों में, धारा 33ग (2) में प्रयुक्त 'कामगार' शब्द में वे सभी व्यक्ति शामिल हैं जिनके दावे के लिए इस उप-धारा के तहत गणना की आवश्यकता है, जो अपने नियोक्ता के साथ एक औद्योगिक कामगार के रूप में उसके संबंध से उत्पन्न होने वाले मौजूदा अधिकार के संबंध में है।

(31) सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम पी. एस. राजगोपालन वगैरह (1 उपर्युक्त) में यह निम्नलिखित रूप में देखा गया थाः "धारा 33ग (2) के अधीन आवश्यक अवधारण करने के प्रयोजन के लिए, उचित मामलों में, श्रम न्यायालय के लिए उस अधिनिर्णय या समझौते की व्याख्या करने के लिए खुला होगा जिस पर कामगार का अधिकार निहित है। जब श्रम न्यायालय को किसी व्यक्ति श्रमिक को अपने मौजूदा व्यक्तिगत अधिकारों को निष्पादित करने या लागू करने की अनुमति देने की शक्ति दी जाती है, तो यह वस्तुतः कुछ मामलों में निष्पादन शक्तियों का प्रयोग है, और यह अच्छी तरह से तय है कि निष्पादन न्यायालय निष्पादन के उद्देश्य के लिए डिक्री की व्याख्या करने के लिए खुला है। यह निश्चित रूप से सच है कि निष्पादन न्यायालय डिक्री के पीछे नहीं जा सकता है, न ही यह डिक्री के प्रावधान में जोड़ या घटा सकता है। ये सीमाएं श्रम न्यायालय पर भी लागू होती हैं, लेकिन निष्पादन न्यायालय की तरह, श्रम न्यायालय भी उस अधिनिर्णय या निपटान की व्याख्या करने में सक्षम होगा, जिस पर एक कर्मचारी धारा 33 सी (2) के तहत अपने दावे को आधार बनाता है।

(32) बचित्तर सिंह बनाम केन्द्रीय श्रम न्यायालय, (9 उपर्युक्त) में निम्नलिखित रूप में यह मत व्यक्त किया गया थाः "धारा 33 सी (2), शब्दों में, यह नहीं कहती है कि केवल एक कामगार उस उपबंध के अधीन आवेदन करने का हकदार है। धारा 33ग (2) के अधीन दावे को कायम रखने के लिए केवल इस बात की जांच की जानी चाहिए कि क्या जिस समय दावा किया गया लाभ संबंधित है, आवेदक एक कामगार था और प्रत्यर्थी उसका नियोक्ता था। अधिनियम की धारा 33 सी (2) में 'देय' शब्द का उपयोग इस व्याख्या को और समर्थन प्रदान करता है। केवल यह तथ्य कि कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने के कुछ समय बाद लाभ कम हो गया था, 'देय' को समाप्त नहीं करेगा।

(33)इन प्राधिकरणों की बारीकी से जांच से जो स्थिति सामने आती है वह यह है कि धारा 33 सी (1) का प्रावधान कार्यवाही को निष्पादित करने की प्रकृति में है। इस धारा के तहत एक आवेदन किया जाता है जहां धन की मात्रा किसी अधिनिर्णय या निपटान आदि के तहत निर्धारित की जाती है, और यदि धन की मात्रा निर्धारित नहीं की जाती है और इसका न्यायनिर्णयन किया जाना है तो न्यायनिर्णयन धारा 33 सी की उप-धारा (2) के संदर्भ में किया जाना है। धारा 33 सी (2) का दायरा 33 सी से अधिक व्यापक है।(1). अधिनियम की धारा 33 सी की उप-धारा (1) इन शब्दों के साथ शुरू होती है "जहां कोई भी पैसा एक कामगार को देय है"। उप-धारा (2) "जहां कोई भी कामगार हकदार है" शब्दों के साथ शुरू होती है। 'देय' और 'हकदार' शब्द महत्वपूर्ण हैं। जबकि 'देय' अभिव्यक्ति दावे की मात्रा और गणना को दर्शाती है, 'हकदार' अभिव्यक्ति प्राप्त करने के अधिकार को समझती है जिसमें अधिकार की सीमा और लाभ शामिल हैं। इसलिए, इन दोनों उप-धाराओं में मुख्य विशिष्ट विशेषता इस तथ्य में निहित है कि क्या आवेदक द्वारा दावा किए गए धन या लाभ की गणना की गई थी। यदि इसकी गणना पहले ही की जा चुकी है तो आवेदन अधिनियम की धारा 33-ग की उपधारा (1) के संदर्भ में उपयुक्त सरकार के पास है, लेकिन यदि इसके लिए धन के संदर्भ में गणना किए जाने में सक्षम धन या लाभों के अधिकार या गणना के निर्णय की आवश्यकता है, तो आवेदन श्रम न्यायालय के समक्ष अधिनियम की धारा 33-ग (2) के संदर्भ में है। विधान-मंडल ने अपने विवेक से धारा 33-ग की उपधारा (1) में यह उपबंध किया कि कर्मकार, उसके समनुदेशित व्यक्ति या उत्तराधिकारी आवेदन कर सकते हैं। यदि विधानमंडल ने इसके विपरीत इरादा किया है, तो वह उपधारा (2) में यह उपबंध कर सकता है कि केवल कामगार ही आवेदन कर सकता है, लेकिन जैसा कि पहले अवलोकन किया गया है, वह इसके बारे में मौन है। अतः उपधारा (2) में यह निहित है कि यदि न्यायनिर्णयन और परिमाणीकरण किया जाना था तो कामगार और उसके समनुदेशिती या उत्तराधिकारी, जैसा कि उपधारा (1) के मामले में है, इस उपधारा के अधीन भी आवेदन कर सकते हैं। उप-धारा (2) में दिए गए शब्दों को हटाने पर बहुत जोर दिया गया है, जो संशोधन के बाद निम्नानुसार हैः-"और इस प्रकार निर्धारित राशि की वसूली की जा सकती है जैसा कि उप-धारा (1) में उपबंध किया गया है।

(34)जैसा कि पहले देखा गया है, यह किसी भी तरह से याचिकाकर्ता के मामले को आगे नहीं बढ़ाता है। उन शब्दों को हटाने के बाद, उपधारा (4) को जोड़ा गया था जो इस प्रकार हैः-"33ग (4) श्रम न्यायालय का निर्णय उसके द्वारा समुचित सरकार को अग्रेषित किया जाएगा और श्रम न्यायालय द्वारा देय पाई गई किसी भी राशि को उपधारा (1) में उपबंधित रीति से वसूल किया जा सकता है।

(35) इस उपधारा के पठन से यह स्पष्ट है कि श्रम न्यायालय का विनिश्चय उसके द्वारा समुचित सरकार को अग्रेषित किया जाएगा और श्रम न्यायालय द्वारा देय पाई गई किसी राशि की वसूली उपधारा में उपबंधित रीति से की जा सकेगी। (1). उपधारा (1) में यह उपबंध किया गया है कि धन की वसूली भूमि राजस्व के बकाये के रूप में की जाएगी। अतः उपधारा (2) में इन शब्दों को हटाने से दावेदार का मामला बदतर नहीं होता है, बल्कि यह इसे बेहतर स्थिति में लाता है। इन शब्दों को एक अलग उप-धारा (4) में और अधिक स्पष्ट शब्दों में जोड़ा गया है और वसूली उप-धारा में दिए गए तरीके से की जानी है। (1). धारा 33 सी में ये सभी उप-खंड एक दूसरे को ओवरलैप करते हैं। सभी को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए और एक दूसरे के साथ अलग-अलग व्याख्या नहीं की जा सकती है। इन उप-धाराओं के संयुक्त अध्ययन से यह अपरिहार्य निष्कर्ष निकलेगा कि केवल एक ही व्याख्या जो संभव हो सकती है वह यह है कि किसी कर्मकार की मृत्यु के मामले में उसका समनुदेशिती या उत्तराधिकारी भी उप-धारा के तहत आवेदन कर सकता है (2).

(36) सिविल न्यायालय की अधिकारिता श्रमिक और प्रबंधन के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों का संज्ञान लेने से वर्जित है क्योंकि अधिनियम के तहत एक विशेष तंत्र प्रदान किया गया है। मदुरा मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम गुरु वरमल और एक अन्य (3 ऊपर) मद्रास उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि जब किसी व्यक्ति के पक्ष में एक वैधानिक अधिकार बनाया जाता है और कानून विशेष रूप से बनाए गए अधिकार को लागू करने के लिए एक विशेष तंत्र भी बनाता है, तो इस तरह बनाए गए अधिकार को सामान्य नागरिक न्यायालय द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है।

(37) कोई अन्य बिंदु का आग्रह नहीं किया जाता है।

(38) ऊपर अभिलिखित कारणों के लिए, मेरा विचार है कि प्रश्न का उत्तर सकारात्मक रूप में दिया जाना चाहिए और कामगार की मृत्यु की स्थिति में उसका उत्तराधिकारी या समनुदेशिती भी अधिनियम की धारा 33ग (2) के अधीन श्रम न्यायालय में दावा कर सकता है। इस निर्णय से विदा लेने से पहले, मैं यह जोड़ सकता हूं कि वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के प्रतिनिधि ने श्रम न्यायालय के समक्ष स्वीकार किया था कि राशि का भुगतान दावेदार को श्रम न्यायालय के निर्देशों के अनुसार किया जाएगा। श्रम न्यायालय के समक्ष केवल एक आवेदक था, अर्थात् प्रत्यर्थी संख्या 21 और श्रम न्यायालय ने याचिकाकर्ता को प्रत्यर्थी संख्या 2 को भुगतान करने का निर्देश दिया जो मृतक कामगार का दत्तक पुत्र है।

(39) तदनुसार यह याचिका विफल हो जाती है और लागत सहित खारिज कर दी जाती है। एस एस संधावलिया, मुख्य न्यायाधीश -(40) मुझे अपने विद्वान भाइयों बैन्स और न्यायमूर्ति टंडन द्वारा दर्ज किए गए उत्कृष्ट निर्णयों को पढ़ने का सौभाग्य मिला है। बैन्स, जस्टिस के प्रति बहुत सम्मान के साथ, मैं टंडन, जस्टिस द्वारा व्यक्त किए गए विचार से पूरी तरह से सहमत हूं और इसमें जोड़ने के लिए कुछ नहीं है।

न्यायालय का आदेश

(41)बहुमत के दृष्टिकोण के अनुसार, रिट याचिका स्वीकार की जाती है और 21 सितंबर, 1973 के श्रम न्यायालय के विवादित आदेश को निरस्त कर दिया जाता है। पार्टियों को अपना खर्च खुद वहन करने के लिए छोड़ दिया जाता है।

एन के एस

(1) ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 743

(2) ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 1604.

(3) (1986-67) 31 एफ जे आर 78.

(4) (1969) 36 इंडियन फैक्ट्रीज जर्नल 308।

(5) 1974 लैब, आईसी 970।

(6) 1978 प्रयोगशाला I सी 1630।

(7) 1972 प्रयोगशाला I C 733.

(8) 1977 प्रयोगशाला I C 1385.

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

प्रियंका वर्मा

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

फ़रीदाबाद, हरियाणा